eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 10, October 2025

भारत में जाति और राजनीतिः समकालीन दृष्टिकोण

डा0 अरविन्द कुमार शुक्ल[1]
[1]एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, राजकीय महिला स्ना0 महाविद्यालय बिंदकी, फतेहपुर उ0प्र0, भारत

Received: 25 Oct 2025 Accepted & Reviewed: 28 Oct 2025, Published: 31 Oct 2025

Abstract

भारतीय समाज में जाति केवल एक सामाजिक संरचना नहीं, बल्कि राजनीतिक संगठन, सत्ता–संरचना और नीति–निर्माण का भी एक महत्त्वपूर्ण आधार रही है। स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात भारतीय संविधान ने समानता, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया, किंतु सामाजिक यथार्थ में जाति–आधारित असमानताएँ और राजनीतिक ध्रुवीकरण निरंतर विद्यमान रहे। समकालीन भारत में जाति और राजनीति का संबंध बहुआयामी रूप ले चुका है, एक ओर जाति–आधारित राजनीतिक लामबंदी ने हाशिए के समुदायों को प्रतिनिधित्व और सशक्तिकरण प्रदान किया, वहीं दूसरी ओर यह पहचान–आधारित राजनीति सामाजिक विभाजन और चुनावी ध्रुवीकरण का कारण भी बनी। यह शोध–पत्र जाति और राजनीति के पारस्परिक संबंधों का ऐतिहासिक, सैद्धांतिक और समकालीन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें औपनिवेशिक काल से लेकर वर्तमान समय तक जाति–आधारित राजनीतिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया गया है। विशेष रूप से मंडल आयोग, आरक्षण नीति, क्षेत्रीय दलों का उदय, दलित और पिछड़ा वर्ग राजनीति, तथा डिजिटल युग में जाति की भूमिका का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि जाति भारतीय लोकतंत्र में एक जटिल यथार्थ है, यह सामाजिक न्याय के उपकरण के रूप में भी कार्य करती है और राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के साधन के रूप में भी। अतः समकालीन राजनीति में जाति की भूमिका को समझने के लिए समावेशी नीतियों, शिक्षा, आर्थिक अवसरों और संवैधानिक मूल्यों की सुदृढ़ स्थापना आवश्यक है।

मुख्य शब्द– जाति व्यवस्था, राजनीति, सामाजिक न्याय, आरक्षण नीति, मंडल आयोग, दलित राजनीति, पहचान की राजनीति, लोकतंत्र, समकालीन भारत

Introduction

भारतीय समाज की संरचना को समझने के लिए जाति एक केंद्रीय अवधारणा है। यह केवल सामाजिक वर्गीकरण की प्रणाली नहीं, बल्कि ऐतिहासिक रूप से सत्ता, संसाधनों, प्रतिष्ठा और अवसरों के वितरण का आधार रही है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक समय तक जाति ने व्यक्ति की सामाजिक स्थिति, व्यवसाय, विवाह–संबंध, धार्मिक आचरण और सामुदायिक पहचान को निर्धारित किया। यद्यपि भारतीय संविधान ने समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के सिद्धांतों को स्थापित करते हुए जाति–आधारित भेदभाव को असंवैधानिक घोषित किया, फिर भी सामाजिक यथार्थ में जाति का प्रभाव समाप्त नहीं हुआ। राजनीति के क्षेत्र में जाति का प्रभाव विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में मतदान, प्रतिनिधित्व और सत्ता–साझेदारी की प्रक्रिया ने जाति को एक नए आयाम में प्रस्तुत किया। जहाँ एक ओर जाति–आधारित लामबंदी ने ऐतिहासिक रूप से वंचित समुदायों विशेषकर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग को राजनीतिक मंच और प्रतिनिधित्व प्रदान किया, वहीं दूसरी ओर इसने पहचान–आधारित राजनीति को भी प्रोत्साहित किया, जिससे सामाजिक ध्रुवीकरण और चुनावी गणित को बढ़ावा मिला।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 10, October 2025

स्वतंत्रता के पश्चात सामाजिक न्याय की अवधारणा भारतीय राजनीति के केंद्र में रही। संविधान सभा में भीमराव रामजी आंबेडकर ने समानता और सामाजिक लोकतंत्र की आवश्यकता पर बल दिया। उनके विचारों ने न केवल संवैधानिक प्रावधानों को दिशा दी, बल्कि दलित राजनीति और सामाजिक चेतना को भी प्रेरित किया। आगे चलकर राजनी कोठारी ने यह प्रतिपादित किया कि भारतीय राजनीति में जाति और राजनीति परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि परस्पर पूरक तत्व हैं, राजनीति ने जाति को आधुनिक संदर्भ में पुनर्संगठित किया और जाति ने राजनीति को सामाजिक आधार प्रदान किया। समकालीन परिदृश्य में जाति और राजनीति का संबंध और भी जटिल हो गया है। मंडल आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन के बाद अन्य पिछड़ा वर्ग की राजनीतिक भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। क्षेत्रीय दलों का उदय, चुनावी गठबंधन की रणनीतियाँ, तथा सामाजिक न्याय के नाम पर होने वाली राजनीतिक लामबंदी ने जाति को सत्ता–संरचना का केंद्रीय घटक बना दिया। डिजिटल युग में सोशल मीडिया और पहचान–आधारित विमर्श ने भी जातीय चेतना को नए रूप में अभिव्यक्त किया है। इस शोध–पत्र का उद्देश्य जाति और राजनीति के पारस्परिक संबंधों का समकालीन दृष्टिकोण से विश्लेषण करना है। इसमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सैद्धांतिक आधार, सामाजिक न्याय की नीतियाँ, चुनावी व्यवहार, तथा वर्तमान चुनौतियों का अध्ययन किया जाएगा। यह अध्ययन इस प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयास करता है कि क्या जाति भारतीय लोकतंत्र के लिए केवल एक विभाजनकारी तत्व है, या वह सामाजिक प्रतिनिधित्व और लोकतांत्रिक सशक्तिकरण का माध्यम भी है।

भारतीय राजनीति में जाति को समझने के लिए विभिन्न समाजशास्त्रीय और राजनीतिक सिद्धांतों का सहारा लिया जाता है। जाति को एक स्थिर, धार्मिक या सांस्कृतिक व्यवस्था के रूप में देखने की अपेक्षा आधुनिक विद्वानों ने इसे एक गतिशील सामाजिक संरचना के रूप में परिभाषित किया है, जो सत्ता–संबंधों और संसाधनों के वितरण से गहराई से जुड़ी हुई है। लुई दुमों ने अपनी प्रसिद्ध कृति Homo Hierarchicus में जाति को 'पवित्रता और अपवित्रता' पर आधारित एक श्रेणीबद्ध व्यवस्था बताया, जिसमें सामाजिक स्थान जन्म से निर्धारित होता है। इसके विपरीत एम.एन. श्रीनिवास ने यह प्रतिपादित किया कि भारतीय समाज में परिवर्तन की प्रक्रियाएँ सक्रिय हैं; उन्होंने 'संस्कृतिकरण' और 'प्रमुख जाति' की अवधारणाओं के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि आर्थिक और राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर कोई जाति स्थानीय स्तर पर प्रभावशाली बन सकती है। राजनीतिक विश्लेषण के क्षेत्र में राजनी कोठारी ने यह तर्क दिया कि भारतीय राजनीति में जाति और राजनीति एक–दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि परस्पर अनुकूलन की प्रक्रिया में जुड़े हुए हैं। राजनीति ने जाति को संगठित अभिव्यक्ति दी, और जाति ने राजनीति को सामाजिक आधार प्रदान किया। इस प्रकार समकालीन दृष्टिकोण में जाति को केवल सामाजिक अवशेष नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक प्रतिस्पर्धा की सक्रिय इकाई के रूप में देखा जाता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से जाति और राजनीति का संबंध औपनिवेशिक काल में अधिक संस्थागत रूप से उभरा। ब्रिटिश शासन ने जनगणना और प्रशासनिक वर्गीकरण के माध्यम से जातियों को स्थिर पहचान के रूप में दर्ज किया, जिससे जातीय चेतना को नया आयाम मिला। पृथक निर्वाचन और प्रतिनिधित्व की नीतियों ने सामाजिक समूहों को राजनीतिक रूप से संगठित होने के लिए प्रेरित किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय संविधान ने समानता और सामाजिक न्याय को मूलाधार बनाया तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण की व्यवस्था की। यह कदम ऐतिहासिक अन्याय की भरपाई का प्रयास था। धीरे–धीरे अन्य पिछड़ा वर्ग भी राजनीतिक विमर्श का केंद्र बना, जिससे सामाजिक संरचना और

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 10, October 2025

सत्ता–संतुलन में परिवर्तन आया। इस ऐतिहासिक विकासक्रम ने यह सिद्ध किया कि जाति केवल सामाजिक संस्था नहीं रही, बल्कि राजनीतिक संसाधन के रूप में भी कार्य करने लगी। स्वतंत्र भारत की राजनीति में निर्णायक मोड़ तब आया जब मंडल आयोग की सिफारिशों को 1990 में लागू किया गया। आयोग ने सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों की पहचान कर उन्हें 27 प्रतिशत आरक्षण देने की अनुशंसा की थी। इस निर्णय ने भारतीय राजनीति में व्यापक बहस और आंदोलन को जन्म दिया। एक ओर इसे सामाजिक न्याय और समान अवसर की दिशा में ऐतिहासिक कदम माना गया, तो दूसरी ओर इसके विरोध में भी तीव्र आंदोलन हुए। मंडल राजनीति के परिणामस्वरूप अन्य पिछड़ा वर्ग की राजनीतिक भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई और राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति–संतुलन बदल गया। इससे क्षेत्रीय दलों को बल मिला और पहचान–आधारित राजनीतिक गठबंधनों का उदय हुआ। मंडल के बाद की राजनीति को कई विश्लेषक 'सामाजिक न्याय की राजनीति' के रूप में वर्णित करते हैं, जिसमें वंचित वर्ग सत्ता–साझेदारी के नए दावेदार बने। दलित राजनीति का उभार भी इसी व्यापक सामाजिक–राजनीतिक परिवर्तन का अंग है। भीमराव रामजी आंबेडकर ने जाति–उन्मूलन और सामाजिक समानता के लिए वैचारिक आधार प्रदान किया। उनके विचारों ने दलित समुदाय में राजनीतिक चेतना और आत्मसम्मान की भावना को विकसित किया। स्वतंत्रता के बाद दलित आंदोलन ने सामाजिक संगठनों और राजनीतिक दलों के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति पाई। विशेष रूप से बहुजन समाज पार्टी के गठन ने दलित राजनीति को संगठित स्वरूप दिया। कांशीराम और मायावती के नेतृत्व में दलित समुदाय ने उत्तर प्रदेश सहित कई राज्यों में सत्ता में भागीदारी प्राप्त की। यह उभार केवल चुनावी सफलता तक सीमित नहीं था, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा और प्रतीकात्मक सशक्तिकरण का भी माध्यम बना।

समकालीन भारत में क्षेत्रीय दलों का उदय जातीय समीकरणों से गहराई से जुड़ा हुआ है। उत्तर भारत में समाजवादी पार्टी और राष्ट्रीय जनता दल जैसे दलों ने पिछड़े वर्गों और विशेष जातीय समूहों के समर्थन के आधार पर राजनीतिक शक्ति अर्जित की। दक्षिण भारत में द्रविड़ मुनेत्र कषगम ने ब्राह्मण–विरोधी आंदोलन और सामाजिक न्याय के एजेंडे के माध्यम से सत्ता संरचना को चुनौती दी। इन दलों ने यह सिद्ध किया कि जाति–आधारित लामबंदी लोकतांत्रिक प्रतिस्पर्धा में निर्णायक भूमिका निभा सकती है। हालांकि, इससे राजनीतिक स्थिरता और नीति–निर्माण में संतुलन बनाए रखने की चुनौती भी उत्पन्न हुई। चुनावी राजनीति में जाति एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्व के रूप में उभरती है। उम्मीदवारों के चयन, टिकट वितरण, गठबंधन निर्माण और मतदान व्यवहार में जातीय समीकरणों का विशेष ध्यान रखा जाता है। राजनीतिक दल अक्सर सामाजिक गठबंधनों जैसे दलित–पिछड़ा, मुस्लिम–दलित या अन्य संयोजन के माध्यम से बहुमत प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में जाति का प्रभाव अधिक स्पष्ट दिखाई देता है, किंतु शहरी क्षेत्रों में भी यह पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। डिजिटल युग में सोशल मीडिया ने जाति–आधारित पहचान को नई अभिव्यक्ति दी है, जिससे राजनीतिक संवाद का स्वरूप बदला है। पहचान की राजनीति अब केवल भौतिक सभाओं तक सीमित नहीं, बल्कि ऑनलाइन मंचों पर भी सक्रिय है।

समकालीन समय में जाति और राजनीति के संबंध अनेक चुनौतियों से घिरे हुए हैं। एक ओर आरक्षण नीति को लेकर निरंतर बहस जारी है, जिसमें सामाजिक न्याय और योग्यता के बीच संतुलन का प्रश्न उठता है। दूसरी ओर जाति–आधारित हिंसा और भेदभाव की घटनाएँ यह दर्शाती हैं कि सामाजिक समरसता अभी पूर्णतः स्थापित नहीं हुई है। शहरीकरण, शिक्षा और वैश्वीकरण के प्रभाव से नई पीढ़ी में जातीय

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 10, October 2025

पहचान के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन अवश्य आया है, किंतु राजनीतिक दल अब भी जातीय गणित को प्राथमिकता देते हैं। इसके अतिरिक्त, आर्थिक असमानता और बेरोजगारी जैसे मुद्दों के साथ जाति का अंतर्संबंध नई जटिलताएँ उत्पन्न करता है। इस प्रकार समकालीन भारतीय राजनीति में जाति एक बहुआयामी वास्तविकता है, यह सामाजिक न्याय और प्रतिनिधित्व का माध्यम भी है तथा राजनीतिक ध्रुवीकरण का कारण भी। इसे समझने के लिए ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सैद्धांतिक विमर्श और वर्तमान सामाजिक–आर्थिक संदर्भों को समग्र रूप से देखना आवश्यक है।

1.1 शोध की आवश्यकता (Need of the Study)– भारतीय लोकतंत्र विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक प्रयोग है, जहाँ सामाजिक विविधता अत्यधिक व्यापक है। इस विविधता के केंद्र में जाति एक ऐतिहासिक एवं संरचनात्मक तत्व के रूप में विद्यमान रही है। यद्यपि संविधान ने समानता और सामाजिक न्याय की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया, तथापि राजनीतिक व्यवहार, चुनावी प्रक्रिया और सत्ता–संरचना में जाति की भूमिका आज भी महत्वपूर्ण है। समकालीन परिप्रेक्ष्य में आर्थिक उदारीकरण, वैश्वीकरण, शहरीकरण और डिजिटल मीडिया के प्रभाव के बावजूद जाति–आधारित राजनीतिक लामबंदी समाप्त नहीं हुई है, बल्कि उसने नए रूप धारण किए हैं। इस अध्ययन की आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि वर्तमान राजनीतिक विमर्श में विकास, राष्ट्रवाद और पहचान–आधारित राजनीति के साथ जातीय समीकरणों का अंतर्संबंध जटिल होता जा रहा है। सामाजिक न्याय की नीतियों, विशेषकर आरक्षण व्यवस्था, पर निरंतर बहस चल रही है। अतः यह आवश्यक है कि जाति और राजनीति के समकालीन संबंधों का गहन विश्लेषण किया जाए, जिससे लोकतांत्रिक प्रक्रिया को अधिक समावेशी और न्यायसंगत बनाने की दिशा में ठोस समझ विकसित हो सके।

1.2 समस्या का स्वरूप एवं व्याख्या– जाति और राजनीति का संबंध द्वैध प्रकृति का है। एक ओर जाति ने ऐतिहासिक रूप से वंचित समुदायों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व और सशक्तिकरण का अवसर प्रदान किया है, वहीं दूसरी ओर इसने पहचान–आधारित ध्रुवीकरण और सामाजिक विभाजन को भी बढ़ावा दिया है। समस्या का मूल स्वरूप इसी विरोधाभास में निहित है। समकालीन भारतीय राजनीति में चुनावी रणनीतियाँ प्रायः जातीय समीकरणों पर आधारित होती हैं। उम्मीदवारों का चयन, टिकट वितरण और गठबंधन–निर्माण में जातीय गणना प्रमुख भूमिका निभाती है। इससे लोकतंत्र में नागरिकता की सार्वभौमिक अवधारणा कभी–कभी जातीय पहचान के अधीन हो जाती है।

इसके अतिरिक्त, आरक्षण नीति और सामाजिक न्याय के प्रश्नों पर उभरने वाले विवाद यह संकेत देते हैं कि सामाजिक समानता और राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के बीच संतुलन बनाना चुनौतीपूर्ण है। अतः समस्या यह है कि क्या जाति भारतीय लोकतंत्र को सशक्त बना रही है या उसे विभाजित कर रही है, और यदि दोनों ही प्रक्रियाएँ साथ–साथ चल रही हैं, तो उनका संतुलन कैसे स्थापित किया जाए।

1.3 अध्ययन का औचित्य (Rationale of the Study)– यह अध्ययन इसलिए औचित्यपूर्ण है क्योंकि जाति भारतीय समाज की ऐतिहासिक संरचना का अभिन्न अंग रही है और राजनीति उसकी अभिव्यक्ति का आधुनिक माध्यम। स्वतंत्रता के बाद सामाजिक न्याय को राज्य की प्राथमिकता बनाया गया, किंतु जाति–आधारित असमानता पूर्णतः समाप्त नहीं हो सकी। समकालीन समय में क्षेत्रीय दलों का उदय, मंडल आयोग के बाद की राजनीति, तथा दलित और पिछड़ा वर्ग आंदोलनों ने यह सिद्ध किया है कि जाति राजनीतिक संगठन का प्रभावशाली आधार बन चुकी है। अतः इस विषय का विश्लेषण न केवल अकादमिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि नीतिगत स्तर पर भी प्रासंगिक है।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 10, October 2025

यह अध्ययन लोकतांत्रिक संस्थाओं, नीति–निर्माण और सामाजिक समरसता पर जाति के प्रभाव को समझने में सहायक होगा तथा भविष्य में अधिक समावेशी राजनीतिक ढाँचे के निर्माण के लिए वैचारिक आधार प्रदान करेगा।

1.4 अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of the Study)–

- जाति और राजनीति के पारस्परिक संबंधों का सैद्धांतिक विश्लेषण करना।
- औपनिवेशिक काल से वर्तमान तक जाति–आधारित राजनीतिक विकास का ऐतिहासिक अध्ययन करना।
- मंडल आयोग के पश्चात सामाजिक न्याय की राजनीति के प्रभाव का मूल्यांकन करना।
- दलित एवं पिछड़ा वर्ग राजनीति के उभार का विश्लेषण करना।
- चुनावी प्रक्रिया और राजनीतिक दलों की रणनीतियों में जाति की भूमिका का अध्ययन करना।
- समकालीन चुनौतियों और संभावित समाधान की पहचान करना।

1.5 शोध–प्रश्न (Research Questions)–

1. क्या जाति समकालीन भारतीय राजनीति में अभी भी केंद्रीय भूमिका निभा रही है?
2. मंडल आयोग के बाद राजनीतिक सत्ता–संतुलन में किस प्रकार परिवर्तन आया?
3. क्या जाति–आधारित राजनीति सामाजिक न्याय को बढ़ावा देती है या सामाजिक ध्रुवीकरण को?
4. क्षेत्रीय दलों के उदय में जातीय समीकरणों की क्या भूमिका रही है?
5. डिजिटल युग में जातीय पहचान और राजनीतिक लामबंदी का स्वरूप किस प्रकार परिवर्तित हुआ है?

1.6 अध्ययन की परिधि एवं सीमाएँ (Scope and Limitations of the Study)– इस अध्ययन की परिधि मुख्यतः स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका तक सीमित है, विशेष रूप से 1990 के बाद के कालखंड पर अधिक ध्यान केंद्रित किया गया है। अध्ययन में सामाजिक न्याय की नीतियाँ, चुनावी व्यवहार, क्षेत्रीय दलों की राजनीति तथा समकालीन चुनौतियों का विश्लेषण शामिल है।

सीमाओं की दृष्टि से यह अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतोंकृपुस्तकों, शोध–पत्रों, सरकारी रिपोर्टों और उपलब्ध आँकड़ों, पर आधारित है। क्षेत्रीय विविधताओं की व्यापकता के कारण सभी राज्यों का विस्तृत विश्लेषण संभव नहीं है; अतः कुछ प्रमुख उदाहरणों के माध्यम से प्रवृत्तियों को स्पष्ट किया गया है। इसके अतिरिक्त, राजनीतिक परिदृश्य में निरंतर परिवर्तन होने के कारण निष्कर्ष समय–विशेष की परिस्थितियों तक सीमित हो सकते हैं। फिर भी, यह अध्ययन जाति और राजनीति के समकालीन संबंधों की व्यापक समझ विकसित करने का प्रयास करता है और भविष्य के अनुसंधानों के लिए आधार प्रदान करता है।

1.7 परिकल्पना (Hypotheses of the Study)– इस शोध के आधारभूत तर्कों एवं उपलब्ध साहित्य के विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित परिकल्पनाएँ प्रतिपादित की जाती हैं–

1. समकालीन भारतीय राजनीति में जाति अब भी एक केंद्रीय और प्रभावशाली निर्धारक तत्व है, जो चुनावी व्यवहार, दलगत रणनीति और सत्ता–संतुलन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 10, October 2025

2. मंडल आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन के पश्चात अन्य पिछड़ा वर्ग की राजनीतिक भागीदारी और प्रतिनिधित्व में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, जिससे राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय राजनीति के शक्ति–संतुलन में संरचनात्मक परिवर्तन आया।
3. जाति–आधारित राजनीतिक लामबंदी ने ऐतिहासिक रूप से वंचित वर्गों (विशेषकर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग) के सामाजिक एवं राजनीतिक सशक्तिकरण में सकारात्मक भूमिका निभाई है।
4. जाति–आधारित राजनीति सामाजिक न्याय की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के साथ–साथ सामाजिक ध्रुवीकरण और पहचान–आधारित विभाजन को भी प्रोत्साहित करती है।
5. क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के उदय और स्थायित्व में जातीय समीकरणों की निर्णायक भूमिका रही है, जिसने भारतीय बहुदलीय लोकतंत्र को अधिक प्रतिस्पर्धी और बहुस्तरीय बनाया है।
6. शहरीकरण, शिक्षा और डिजिटल संचार माध्यमों के विस्तार के बावजूद जातीय पहचान पूर्णतः कमजोर नहीं हुई है, बल्कि उसने नए सामाजिक–राजनीतिक रूप ग्रहण किए हैं।

इन परिकल्पनाओं के माध्यम से अध्ययन यह परीक्षण करेगा कि जाति समकालीन भारतीय लोकतंत्र में केवल एक सामाजिक अवशेष है या वह राजनीतिक संरचना का सक्रिय और निर्णायक घटक बनी हुई है।

1.**8 शोध प्राविधि–** प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक (Qualitative) एवं विश्लेषणात्मक (Analytical) शोध पद्धति पर आधारित है। इसका उद्देश्य जाति और राजनीति के पारस्परिक संबंधों को समकालीन संदर्भ में समझना एवं उनका आलोचनात्मक विश्लेषण करना है। शोध की प्रकृति व्याख्यात्मक (Explanatory) तथा वर्णनात्मक (Descriptive) है, जिसमें ऐतिहासिक और सैद्धांतिक दृष्टिकोणों को समन्वित किया गया है।

अध्ययन में मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। इसके अंतर्गत प्रकाशित पुस्तकों, शोध–पत्रों, पत्रिकाओं, सरकारी रिपोर्टों, आयोगों की संस्तुतियों, जनगणना आँकड़ों, निर्वाचन आयोग के आँकड़ों तथा विश्वसनीय समाचार स्रोतों का संदर्भ लिया गया है। विशेष रूप से सामाजिक न्याय, मंडल आयोग, दलित राजनीति, क्षेत्रीय दलों और चुनावी व्यवहार से संबंधित अकादमिक साहित्य का गहन अध्ययन किया गया है।

ऐतिहासिक विश्लेषण की पद्धति के माध्यम से औपनिवेशिक काल से लेकर समकालीन समय तक जाति–आधारित राजनीतिक प्रक्रियाओं के विकासक्रम को समझने का प्रयास किया गया है। तुलनात्मक पद्धति का उपयोग विभिन्न राज्यों और राजनीतिक दलों के उदाहरणों के माध्यम से किया गया है, जिससे क्षेत्रीय विविधताओं और प्रवृत्तियों का विश्लेषण संभव हो सके।

सैद्धांतिक ढाँचे के अंतर्गत प्रमुख समाजशास्त्रीय एवं राजनीतिक सिद्धांतों का उपयोग किया गया है, ताकि जाति को केवल सामाजिक संस्था के रूप में नहीं, बल्कि सत्ता–संबंधों और लोकतांत्रिक प्रतिस्पर्धा के संदर्भ में समझा जा सके। अध्ययन में 'पहचान की राजनीति', 'सामाजिक न्याय' तथा 'राजनीतिक प्रतिनिधित्व' जैसी अवधारणाओं को विश्लेषणात्मक उपकरण के रूप में अपनाया गया है।

डेटा के विश्लेषण हेतु सामग्री–विश्लेषण की पद्धति का प्रयोग किया गया है, जिसके माध्यम से राजनीतिक भाषणों, घोषणापत्रों, नीतिगत दस्तावेजों और चुनावी प्रवृत्तियों का अध्ययन किया गया है। इसके

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 10, October 2025

अतिरिक्त, सांख्यिकीय आँकड़ों का उपयोग केवल प्रवृत्तियों को स्पष्ट करने के उद्देश्य से किया गया है, न कि व्यापक मात्रात्मक परीक्षण के रूप में।

शोध की विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के लिए प्रामाणिक एवं मान्य स्रोतों का चयन किया गया है तथा विभिन्न विद्वानों के दृष्टिकोणों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। तथापि, यह अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित होने के कारण क्षेत्रीय सर्वेक्षण या प्रत्यक्ष साक्षात्कार को सम्मिलित नहीं कर सका है, जो इसकी एक सीमा मानी जा सकती है। समग्रतः यह शोध प्राविधि जाति और राजनीति के जटिल संबंधों को बहुआयामी दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करती है, जिससे समकालीन भारतीय लोकतंत्र के सामाजिक आधार का समग्र विश्लेषण संभव हो सके।

1.9 साहित्य समीक्षा (Review of Literature)– जाति और राजनीति के संबंध पर व्यापक अकादमिक साहित्य उपलब्ध है। प्रारंभिक समाजशास्त्रीय अध्ययन में लुई दुमों ने जाति को एक श्रेणीबद्ध सामाजिक व्यवस्था के रूप में व्याख्यायित किया, जिसमें पवित्रता–अशुद्धता का सिद्धांत केंद्रीय है। उनके अनुसार जाति भारतीय समाज की सांस्कृतिक संरचना का मूल तत्व है। इसके विपरीत एम.एन. श्रीनिवास ने सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं पर बल देते हुए 'संस्कृतिकरण' और 'प्रमुख जाति' की अवधारणा प्रस्तुत की, जिससे स्पष्ट हुआ कि जाति एक गतिशील सामाजिक शक्ति भी है।

राजनीतिक विश्लेषण के क्षेत्र में राजनी कोठारी ने अपनी कृति Caste in Indian Politics में प्रतिपादित किया कि भारतीय लोकतंत्र में जाति और राजनीति परस्पर अनुकूलन की प्रक्रिया में जुड़े हुए हैं। उन्होंने यह तर्क दिया कि राजनीति ने जाति को आधुनिक संगठित रूप दिया और जाति ने राजनीति को सामाजिक आधार प्रदान किया।

क्रिस्टोफ़ जैफ़रेलो ने India*s Silent Revolution में मंडल राजनीति और पिछड़े वर्गों के उभार को लोकतांत्रिक क्रांति के रूप में प्रस्तुत किया। सुधा पाई ने दलित राजनीति और लोकतांत्रिक प्रक्रिया के संबंधों का विश्लेषण करते हुए बताया कि दलित आंदोलन ने भारतीय लोकतंत्र को अधिक समावेशी बनाया है।

अन्य विद्वानों जैसे दीपांकर गुप्ता, घनश्याम शाह और कंचन चंद्र ने पहचान–आधारित राजनीति, चुनावी व्यवहार और सामाजिक गठबंधनों की भूमिका पर प्रकाश डाला है। समग्रतः साहित्य यह दर्शाता है कि जाति भारतीय राजनीति में न तो पूर्णतः क्षीण हुई है और न ही स्थिर है; बल्कि वह बदलते सामाजिक–आर्थिक संदर्भों में नए रूप ग्रहण कर रही है।

1.10 डेटा विश्लेषण– उपलब्ध द्वितीयक आँकड़ों और राजनीतिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि 1990 के बाद भारतीय राजनीति में सामाजिक संरचना के आधार पर सत्ता–संतुलन में परिवर्तन आया है। मंडल आयोग की सिफारिशों के लागू होने के पश्चात अन्य पिछड़ा वर्ग का प्रतिनिधित्व संसद और राज्य विधानसभाओं में बढ़ा है।

चुनावी आँकड़े यह संकेत देते हैं कि कई राज्यों में क्षेत्रीय दलों की सफलता जातीय आधार पर निर्मित सामाजिक गठबंधनों पर निर्भर रही है। उदाहरणस्वरूप उत्तर प्रदेश और बिहार में दलित–पिछड़ा तथा मुस्लिम–पिछड़ा गठबंधनों ने निर्णायक भूमिका निभाई है।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 10, October 2025

सामग्री–विश्लेषण के आधार पर राजनीतिक घोषणापत्रों और भाषणों में सामाजिक न्याय, आरक्षण, प्रतिनिधित्व और पहचान जैसे शब्दों की आवृत्ति में वृद्धि देखी गई है। इससे स्पष्ट होता है कि जाति–आधारित मुद्दे चुनावी विमर्श का महत्वपूर्ण हिस्सा बने हुए हैं।

हालाँकि शहरी क्षेत्रों में विकास, रोजगार और बुनियादी सुविधाओं जैसे मुद्दों का प्रभाव बढ़ा है, फिर भी उम्मीदवार चयन और मतदाता व्यवहार में जातीय पहचान की भूमिका पूर्णतः समाप्त नहीं हुई है।

1.11 चर्चा (Discussion)– प्रस्तुत विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि जाति और राजनीति का संबंध बहुआयामी और द्वंद्वात्मक है। एक ओर जाति–आधारित लामबंदी ने ऐतिहासिक रूप से वंचित वर्गों को राजनीतिक मुख्यधारा में स्थान दिलाया है, जिससे लोकतंत्र अधिक प्रतिनिधिक बना है। दूसरी ओर यह प्रक्रिया पहचान–आधारित ध्रुवीकरण को भी बढ़ावा देती है, जिससे नागरिकता की व्यापक अवधारणा कभी–कभी सीमित हो जाती है।

मंडल के बाद की राजनीति ने सामाजिक न्याय को संस्थागत रूप दिया, किंतु इसके साथ ही 'योग्यता बनाम आरक्षण' का विमर्श भी तीव्र हुआ। क्षेत्रीय दलों का उभार लोकतांत्रिक विविधता का संकेत है, परंतु गठबंधन राजनीति ने नीतिगत स्थिरता की चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं।

डिजिटल युग में जातीय पहचान ने नया रूप ग्रहण किया है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों पर जाति–आधारित संगठनों और अभियानों की सक्रियता यह दर्शाती है कि जातीय चेतना केवल ग्रामीण क्षेत्रों तक सीमित नहीं रही।

इस प्रकार चर्चा यह संकेत देती है कि जाति न तो केवल सामाजिक अवशेष है और न ही केवल राजनीतिक साधन; बल्कि यह दोनों के बीच एक जटिल सेतु है, जो लोकतांत्रिक संरचना को प्रभावित करता है।

1.12 परिणाम (Findings)– अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित प्रमुख परिणाम सामने आए–

- समकालीन भारतीय राजनीति में जाति अभी भी एक प्रभावशाली कारक है।
- मंडल आयोग के पश्चात पिछड़े वर्गों की राजनीतिक भागीदारी और प्रतिनिधित्व में वृद्धि हुई है।
- दलित और पिछड़ा वर्ग राजनीति ने सामाजिक न्याय की प्रक्रिया को सुदृढ़ किया है।
- क्षेत्रीय दलों की सफलता जातीय समीकरणों से गहराई से जुड़ी हुई है।
- जाति–आधारित राजनीति लोकतंत्र को अधिक प्रतिनिधिक बनाती है, किंतु सामाजिक ध्रुवीकरण की संभावना भी उत्पन्न करती है।
- शहरीकरण और वैश्वीकरण के बावजूद जातीय पहचान नए रूपों में विद्यमान है।

अनुशंसाएँ (Recommendations)–

1. सामाजिक न्याय की नीतियों को पारदर्शी और डेटा–आधारित बनाया जाए, जिससे आरक्षण संबंधी विवादों में संतुलन स्थापित हो सके।
2. शिक्षा और कौशल–विकास कार्यक्रमों को सुदृढ़ कर सामाजिक–आर्थिक असमानता को कम किया जाए।
3. राजनीतिक दलों को पहचान–आधारित ध्रुवीकरण से आगे बढ़कर विकास और सुशासन के मुद्दों को प्राथमिकता देनी चाहिए।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Volume 04, Issue 10, October 2025

4. स्थानीय स्तर पर सामाजिक समरसता और अंतर–जातीय संवाद को बढ़ावा दिया जाए।
5. निर्वाचन सुधारों के माध्यम से उम्मीदवार चयन में योग्यता और प्रतिनिधित्व के बीच संतुलन स्थापित किया जाए।
6. डिजिटल मीडिया पर जाति–आधारित घृणा–भाषण को नियंत्रित करने हेतु प्रभावी नीतियाँ बनाई जाएँ।

अनुशंसाएँ इस दिशा में इंगित करती हैं कि जाति को सामाजिक न्याय के उपकरण के रूप में बनाए रखते हुए उसे विभाजनकारी राजनीति का साधन बनने से रोका जाए, ताकि भारतीय लोकतंत्र अधिक समावेशी और सुदृढ़ बन सके।

निष्कर्ष– प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जाति और राजनीति का संबंध भारतीय लोकतंत्र की एक जटिल एवं बहुआयामी वास्तविकता है। जाति, जो परंपरागत रूप से सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था के रूप में देखी जाती थी, आधुनिक लोकतांत्रिक प्रक्रिया में एक प्रभावशाली राजनीतिक संसाधन के रूप में उभरी है। स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात संवैधानिक प्रावधानों और सामाजिक न्याय की नीतियों ने ऐतिहासिक रूप से वंचित वर्गों को प्रतिनिधित्व और अवसर प्रदान किए, किंतु सामाजिक संरचना में निहित असमानताएँ पूर्णतः समाप्त नहीं हो सकीं। मंडल आयोग के पश्चात भारतीय राजनीति में शक्ति–संतुलन का पुनर्गठन हुआ और अन्य पिछड़ा वर्ग सहित दलित समुदायों की राजनीतिक भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। इससे लोकतंत्र की प्रतिनिधिकता सुदृढ़ हुई तथा सत्ता–साझेदारी का दायरा विस्तृत हुआ। क्षेत्रीय दलों का उभार और जातीय गठबंधनों की राजनीति इस परिवर्तन का प्रत्यक्ष परिणाम है।

हालाँकि जाति–आधारित राजनीति ने सामाजिक न्याय को संस्थागत आधार दिया है, परंतु इसके साथ सामाजिक ध्रुवीकरण, पहचान–आधारित प्रतिस्पर्धा और विकासात्मक मुद्दों के हाशियाकरण जैसी चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। चुनावी प्रक्रिया में जातीय गणित की प्रधानता कभी–कभी लोकतंत्र की व्यापक नागरिक अवधारणा को सीमित कर देती है।

समकालीन परिदृश्य में यह आवश्यक है कि जाति को केवल चुनावी रणनीति के उपकरण के रूप में न देखा जाए, बल्कि उसे सामाजिक परिवर्तन और समावेशी विकास की दिशा में प्रयुक्त किया जाए। शिक्षा, आर्थिक अवसर, सामाजिक समरसता और संवैधानिक मूल्यों की सुदृढ़ स्थापना ही वह मार्ग है, जिसके माध्यम से जाति और राजनीति के संबंध को संतुलित किया जा सकता है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जाति भारतीय राजनीति में न तो समाप्त हुई है और न ही स्थिर है; वह परिवर्तित सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों के साथ नए रूपों में प्रकट हो रही है। लोकतांत्रिक प्रणाली की सफलता इसी में निहित है कि वह जातीय विविधता को विभाजन का आधार न बनने दे, बल्कि उसे समानता, प्रतिनिधित्व और सामाजिक न्याय के सशक्त साधन के रूप में रूपांतरित करे।

संदर्भ सूची–

1- Rajni Kothari — Caste in Indian Politics, Publisher: Orient Blackswan, New Delhi; Year: 2010; ISBN: 9788125040132
2- Anupama Rao — The Caste Question: Dalits and the Politics of Modern India, Publisher: Permanent Black, Ranikhet; Year: 2011; ISBN: 9788178243214

3- K.L. Sharma (एड.) — Caste and Class in India, Publisher: Rawat Publications, Jaipur; Year: 2012; ISBN: 8170332052
4- Ghanshyam Shah — Caste and Democratic Politics in India, Publisher: Anthem Press, London; Year: 2004; ISBN: 9781843310860
5- Suraj Yengde — Caste Matters, Publisher: Penguin Random House India; Year: 2019; ISBN: 9789353055820
6- Kiran Shukla — Caste Politics in India: A Case Study, Publisher: South Asia Books; Year: 1987; ISBN: 9789999079280
7- Anagha Ingole — Caste Panchayats and Caste Politics in India, Publisher: Palgrave Macmillan Singapore; Year: 2021; Hardcover ISBN: 9789811612749; Paperback ISBN: 9789811612770; eBook ISBN: 9789811612756
8- Debashish Bhasin & Chitragandha Adapa — Ambedkar, Scheduled Caste and Indian Politics, Publisher: Peridot Literary Books, Delhi; Year: 2024; ISBN: 9788196192600
9- Kabir Pandey (एड.) — Dalit Mobility, Identity and Politics of Caste, Publisher: Peridot Literary Books, Delhi; Year: 2024; ISBN: 9789362710277
10- Raghu Thakur & Ram Manohar Lohia — Caste System, Publisher: Aakar Books; Year: 2024; ISBN: 9789350028698
11- Manoranjan Mohanty — Class, Caste, Gender, Publisher: Aakar Books; Year: 2024; ISBN: 9789350029053
12- Amartya Sen — The Argumentative Indian, Publisher: Allen Lane; Year: 2005; ISBN: 9780713996876,
13- Sujatha Gidla — Ants Among Elephants: An Untouchable Family and the Making of Modern India, Publisher: Farrar, Straus and Giroux; Year: 2017; ISBN: 9780865478114